P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-8* (Part-1) November- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

साम्प्रदायिक विमर्श और प्रेमचन्द का साहित्य

हबीब खान
सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
राजकीय बाँगड़ महाविद्यालय,
डीडवाना

सारांश

साम्प्रदायिकता ऐसी चिन्ताधारा है, जो धर्म, संस्कृति, राजनीति का पर्दा ओढ़कर आतंक फैलाती है। सम्प्रदायों के बीच संशय के बीज बोती है और आग लगाती है। आग लगाने वालों का चरित्र घृणित और मानवद्रोही राजनीति का चरित्र किसी से छिपा नहीं है। आग लगाने का यह काम इतना आसान है कि आग बुझने का नाम नहीं लेती। साम्प्रदायिक बोलों पर चुनाव लड़ें जाते है और राजनेता जीत जाते हैं। स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता की जड़ में धर्म काम करता है। धार्मिक भावना के जरिये राजनीति की फसल तैयार की जाती है। 'अनेकता में एकता' वाले इस देश में कई संस्कृतियाँ आकर इस संस्कृति में रच–बस गई और आज भी समन्वयवाद की सुगन्ध आती है। जिसके लिए शायर इकबाल भी कहता है कि 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी'। साम्प्रदायिकता के संकेत मध्यकालीन भारत से लगातार आधुनिक भारत तक बिखरे पड़े है जो आज नासूर बन गए है। लोग अपनी सभ्यता और संस्कृति को भूलकर 'अमे पांच अमारा पचीस' के भाषण पर भ्रमित होकर अपनी पहचान भूल जाते है। हिन्दुस्तान की कोई जाँच एजेन्सी ऐसे भाषण को साम्प्रदायिक साबित नहीं कर सकी। साहित्य, संस्कृति और इतिहास का धार्मिकीकरण किया जा रहा है। नयी पीढ़ी को धर्मोन्मादी बनाया जा रहा है। वैज्ञानिक विवेकशील–सहिष्णु–समतामूलक मानवतावाद के स्थान पर प्रलय के पक्षधर पागल तत्त्व देश की अखण्डता और मिलेजुलेपन की जड़े काट रहे है। साम्प्रदायिक औजारों की धार तेज की जा रही है। सबका साथ सबका विकास का आदर्श वाक्य अपनी क्या ही करामात दिखा रहा है ! जो धर्म सर्वभूतरत होने के लिए प्रतिबद्ध था, वह किस दिशा में जा रहा है ? विधर्मियों के विनाश की कब्रगाह तैयार कर रहा है। संकीर्ण विचारों का विमर्श खड़ा कर माहौल को भरमाया और गरमाया जा रहा है। बदले की आग को सुलगाया जा रहा है। धर्म को पीछे धकेलकर, कुछ बुरे आदमियों का हवाला देकर बदले की भट्टी का डर दिखाया जा रहा है। ऐसे में प्रेमचन्द जैसे साम्प्रदायिक सद्भाव वाले लेखक की जरूरत हैं जिन्होने लेखन के जरिये हिन्दू–मुसलमानों को एक होने का संदेश दिया और स्वतंत्रता संग्राम के लिए एकत्रित किया। दोनों धर्मो की बुराई, आडम्बरों, अंधविश्वासों, कटुताओं की आलोचना कर मानवीय धर्म स्थापित करने की कोशिश की। उनकी कहानियों और उपन्यासों के पात्र दोनों धर्मो के लोग होते थे और उनके चरित्र के माध्यम से एक धार्मिक सद्भाव और सामाजिक समरसता का वातावरण तैयार करते थे। निश्चय ही प्रेमचन्द हिन्दू मुस्लिम एकता के हामी थे।

मुख्य शब्द : राजनीति की फसल, बदले की भट्टी, सामाजिक समरसता, धार्मिक ध्रुवीकरण, संस्कृति की दरार, नफरत की आग, मानवतावादी, एकता के हामी, तंगनजरी, गमगीन, उदारवादी मुसलमान, साम्प्रदायिक औजार।

प्रस्तावना

प्रेमचन्द पर उठे तात्कालिक विवाद जिस दिशा में संकेत करते है वह यह है कि लेखक की विचारधारा सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। चाहे वे किसी विमर्श की दिशा तय करते हो। इसका जीवन्त उदाहरण है कि जब साम्प्रदायिक शक्तियों ने प्रेमचन्द का भगवाकरण करने की चेष्टा की तो उनके वे विचारात्मक लेख काम आये जिसमें उन्होंने सीधे स्पष्ट विचाारों में साम्प्रदायिकता की कटु आलोचना की हैं। यह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता के अन्धकार में उपन्यासों और कहानियों को लेकर विचारधारा को तोड़ने–मरोड़ने की कोशिश की गई उस समय प्रेमचन्द की विचारधारा का निर्धारण विचारात्मक निबन्धों से किया गया। भारत की फासिस्ट शक्तियों के लिए प्रेमचन्द आज भी घृणा के पात्र है।

यह समय की विडम्बना ही है कि सत्ता की कुर्सी वोट की राजनीति से जुड़ गई है। उदारवादी मुस्लिम हाशिए पर आ गये है। एक भला आदमी आप

को वोट दे सकता मगर बड़ी संख्या में वोटों का ठेकेदार नहीं बन सकता हैं। यहाँ उदारवादी और धर्मकांडों में विश्वास न करने वाला मुसलमान अपने समुदाय में अजनबी बन जाता है और कट्टर हिन्दू को भी उसकी उपस्थिति अप्रिय लगती है क्योंकि वह मिलजुली संस्कृति की बात करता है। ऐसे में साम्प्रदायिकता की निशानदेही करना जरूरी है।

अध्ययन का उद्देश्य

साम्प्रदायिकता एक ज्वलंत समस्या और प्रासंगिक विषय है, जिसका अध्ययन करना ज्ञान धारा में विकास के साथ दिशा निर्धारण के लिए भी आवश्यक है। साम्प्रदायिकता की जड़ तक पहुँचकर समूल नष्ट करने का मंत्र पकड़ना इसका मुख्य उद्देश्य है। शोधपत्र के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए हैं।

1. साम्प्रदायिकता का अर्थ और प्रकृति
2. साम्प्रदायिकताः भारत में में उदय एव क्रमिक विकास
3. साम्प्रदायिकता का प्रभाव
4. साम्प्रदायिकता पर इस्लामी दृष्टिकोण
5. प्रेमचन्द के साहित्य में साम्प्रदायिक सद्भाव एवं विचार
6. साम्प्रदायिकता को रोकने का प्रयास

साम्प्रदायिकता का अर्थ एवं प्रकृति

भले लोगों से बुरे काम करवाने हो तो इसके लिए धर्म की जरूरत पड़ती है– स्टीवन वाइनबर्ग

साम्प्रदायिकता एक ऐसी विचारधारा है जो धर्म, संस्कृति और राष्ट्रवाद का खोल ओढ़कर आती है। वह धर्म–निरपेक्षता का खोखला दावा प्रस्तुत करती है और समाजवाद के आदर्श से जन समुदाय को भ्रमित करती है। साम्प्रदायिकता अपने सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदाय के प्रति घृणा, विरोध, उपेक्षा और आक्रामकता की भावना का दूसरा नाम है। जिसका आधार वास्तविक या काल्पनिक आशंका को जन्म देता है कि उक्त सम्प्रदाय हमारे सम्प्रदाय और संस्कृति को नष्ट करने या हमें जान–माल–इज्जत की क्षति पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है। धर्मगत साम्प्रदायिकता राष्ट्र पर एकाधिकार करना चाहती है चाहे वह हिन्दू या मुस्लिम साम्प्रदायिकता हो। बैर, विरोध, घृणा, उपेक्षा, वैमनस्य, निन्दा, तिरस्कार, हिंसा, मारकाट आदि साम्प्रदायिकता के अस्त्र है। जो समाज या सम्प्रदाय इन अस्त्रों से लडाई लड़ता है वह साम्प्रदायिक है। जो अपने सम्प्रदाय का समर्थन और पक्षपात करता है और दूसरे सम्प्रदाय से वैमनस्य रखता है, धर्मावलम्बियों द्वारा लोगों के जीवन में जहर फैलाता है। साम्प्रदायिक तनाव, संघर्ष और उपद्रव इस वृक्ष के जहरीले फल है। साम्प्रदायिकतावाद परम्परावाद की जड़ से निकलता है और परम्पराओं के प्रति अति मोह साम्प्रदायिकता को जन्म देता हैं। परम्परा को स्वार्थ का नकाब पहनाकर खड़ा करने वाला संगठन अपने को कितना भी अराजनैतिक और धार्मिक घोषित करें परन्तु वे धार्मिक नहीं होते हैं। धर्म का दुरूपयोग करते है। संस्कृति को विकृत करते है। अनैतिकता फैलाकर समाज में वैमनस्य का प्रसार करते है। साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत वे समस्त भावनाएँ सम्मलित है जो धर्म या भाषा के नाम पर किसी समुदाय विशेष के हितों को अधिक बल दिया जावे और उस समुदाय में अन्यों से पृथकता की भावना पैदा की जावें। मेरा सम्प्रदाय, मेरा पंथ और मेरा मत ही अच्छा है अन्य सम्प्रदाय हेय है, ऐसी भावना ही साम्प्रदायवाद को जन्म देती है। इस विविधता वाले देश में अनेक धर्म और सम्प्रदाय है जो अपने सिद्धान्तों और धारणाओं के अनुसार स्वतंत्र रूप से जीवन जीने का अधिकार रखते हैं। अपने धर्म और सम्प्रदाय के धार्मिक ग्रंथ के निर्धारित नियमों के अन्तर्गत जीवन निर्वहन करते है। शायद अलग धर्मशास्त्रों का विकास इसी कारण हुआ है। भारतीय संस्कृति अनेक संस्कृतियों का सपुँज है जिसमें विविधता और समरसता की प्रक्रियाएँ विश्लेषण–संश्लेषण के रूप में निरन्तर चलती रहती है। वर्तमान जिस भारतीयता में हम जी रहे है उसके विकास में अनेक समाजों, प्रजातियों और संस्कृतियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विदेश से कितने आये और इस संस्कृति की प्रकृति के अनुरूप होकर इसी में समाते रहे। रवीन्द्रनाथ टैगोर 'भारत–तीर्थ' कविता में भारतीय संस्कृति को उजागर करते हुए लिखते है कि आचार्य द्रविड, मंगोल, शक, हूण, पठान और मुगल आये और इस संस्कृति में एकमेक हो गए। बड़ी आशा से उन्होंने कहा कि आज जो धृणा के कारण दूर खडे है, उनका बन्धन नष्ट हो जायेगा, वे भी आयेंगे और घेर कर खडे होंगे– भारत के इस महामानव सागर के तीर पर।'

साम्प्रदायिकता का उदय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भक्तिकाल के उदय के सम्बन्ध में हिन्दुओं की पराजय और उससे उत्पन्न सांस्कृतिक संकट को भक्तिकाल के विकास का कारक मानते है। मुसलमानी शासकों के आततायी वातावरण के कारण शायद वल्लभाचार्य को 'देश मलेच्छाक्रांत है' और संस्कृति के विकृति का संकट सताने लगा था। कुछ ऐसा ही संकेत 'सूर्यकांत निराला' ने 'तुलसीदास' काव्य में दिया है। वे देख रहे है कि कैसे भारत का सांस्कृतिक सूर्य मंद पड़ गया है और इस्लाम की चाँदनी फैल रही है। निराला के सम्बन्ध में रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते है, 'वे इस्लाम के सांस्कृतिक आंतक को स्पष्ट देख रहे है और उन्हीं परिस्थितियों के बीच वे तुलसी के कवि जीवन का उदय दिखाते है। वल्लभाचार्य ने तात्कालिक हिन्दू धर्म की दुरावस्था का वर्णन किया था। निराला समग्र संस्कृति को मुरझाएँ कमल के रूप में अंकित करते है। जायसी ने पदमावत में 'सहज अकुंठ' भाव से हिन्दू–तुरक युद्ध का जगह–जगह चित्रण किया है। निराला ने भी वैसे ही स्थिर मन से कहा, 'शासन करते है मुसलमान।' यह हिन्दू–अस्मिता के लिए संकट की घड़ी है।'[1]

मुगल शासन के बाद देश में ईस्ट इंडिया कम्पनी और अंग्रेजों को शासन कई सालों तक रहा। जब जनता अंग्रेजों के आर्थिक शोषण और राज से त्रस्त हो गई तो असंतोष सब जगह फूट पड़ा। यहाँ के लेखकों के विचारों में भी असंतोष दिखाई देने लगा। अतीत की पुनर्व्याख्या और उसका महिमामण्डन नवजागरण की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है। हमारे विचारक अतीत की गरिमा और उसकी मृगमरीचिका से इतने प्रभावित हुए कि अपनी संस्कृति की बड़ी तलाश में आत्मलीन हो गए। वे भूल गए कि वर्तमान और भविष्य में इससे क्या मदद ले सकते है। इस विचार को आत्मसात किए बिना प्राचीन गौरव गाथा को अनेक संस्कृति वाले देश में पुनः प्रतिष्ठित करने के

प्रयास में लग गए। अन्ततः उनका प्रयास साम्प्रदायिक मनोभाव को उभारने और पुष्ट करने मे सहायक बना। आर्य समाज जैसी संस्था ने जहाँ सनातन धर्म की रूढ़िवाद पर चोट करते हुए बौद्धिक वातावरण की तरफ खींचा, वहीं वेदों को सर्वकालिक ज्ञान–विज्ञान का भण्डार मानते हुए वेदों की ओर लौटने की बात कहकर पुनरूत्थान की चेतना को बल पहुँचाया। बुनियादी तौर पर नवजागरण की कोख से स्वाधीनता का मंत्र निकला था। स्वाधीनता आन्दोलन की शुरूआत सन 1885 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से होती है। सर ए.ओ. ह्यूम ने अंग्रेजी राज और भारतवासियों के बीच एक ऐसी कड़ी के रूप में स्थापना की थी कि जो भारतीयों के असंतोष को कम कर सके और अंग्रेजी राज को कल्याणकारी शासक के रूप में प्रस्तुत कर सके। शुरूआती दौर में भारतीयों की माँग केवल प्रशासन में हिस्सेदारी और आर्थिक शोषण से मुक्ति था। लेकिन अंग्रेजों ने कोई रचनात्मक कार्य नहीं किया और लुभावने आश्वासन देते रहे। तिलक जैसे नेताओं ने धर्म को सामने लाकर बहुसंख्यक हिन्दुओं को लामबन्द किया था। अंग्रेज शासक 'फूट डालो शासन करों' की दुर्नीति के लिए विख्यात हैं। किन्तु उन्हें अपनी दुर्नीति में सफलता नवजागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन से उपजे अन्तर्विरोधों ने, उनके लिए जमीन पहले ही तैयार कर दी थी। सर जाने स्ट्रेशी ने साफ लिखा है, 'हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि हम पूरी ताकत के साथ विभिन्न धर्मों और जातियों के बीच मौजूदा भेदभाव बना रहने दे। हमें भेदभाव समाप्त करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। 'फूट डालो और राज करो' ही भारतीय सरकार का सिद्धान्त होना चाहिए।'[2]

कांग्रेस बुनियादी रूप से धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक दल रही। किन्तु उसके भीतर कई हिन्दूवादी समाज की मानसिकता वाले लोग भी थे। गांधीजी के नेतृत्व नें हिन्दुओं और मुसलमानों की शिरकत रहीं। दल में बार–बार उभरती हिन्दूवादी रूझान अल्पसंख्यकों के बड़े हिस्से को बार–बार रोकती रही और उनके मन में यह बात धर कर गई कि कांग्रेस बहुसंख्यक हिन्दुओं के हितों को ही प्रमुखता देने वाली राजनीतिक संस्था है।

आजादी के बाद साम्प्रदायिकता और धारदार हुई है। पूंजी के प्रसार से औद्योगिक विकास और आधुनिकीकरण का प्रसार हुआ है। परन्तु मानसिक स्तर में सुधार और समझ विकसित करने वाली शिक्षा का प्रबन्ध नहीं हो सका है। फलतः धार्मिक अंधविश्वास मताग्रहों से जनता मुक्त नहीं हो सकी है। देश में प्राचीन सामाजिक ढांचे का विकास के साथ तालमेल नहीं बैठाया जा सका है। विकास की रफ्तार भी धीमी है। शहरों और गांवों में बड़ी असमानता है। क्षेत्रों का पिछडापन समाज में असन्तुलन पैदा करता है। असंतोष बढ़ा है। जो प्रतिक्रियावादी तत्त्वों को पनपने का अवसर देता है। के. दामोदरन ने इन तत्त्वों को ही साम्प्रदायिकता का कारक माना है, 'प्रतिक्रियावादी तत्त्वों का आज भी समाज पर प्रभाव है। ये प्रतिक्रियावादी तत्व प्रायः ही पृथकतावादी प्रवृत्तियों, साम्प्रदायिक और जातीय विद्वेषों को प्रोत्साहित करते हैं। साम्प्रदायिक और धार्मिक संगठन स्वभावतः धर्म निरपेक्षता, जनतंत्र और राष्ट्रीय एकता के मार्ग में रूकावटें खड़ी करते है। ये जनता के सृजनात्मक शक्तियों को मार्गच्युत करते है। आर्थिक उन्नति और समाजवाद के लिए जनता के संघर्ष को रोकते है। आज भी सैंकडों मठ, संघ और अन्य साम्प्रदायिक तथा धार्मिक संस्थाएँ कायम है। आज भी ऐसे हजारों पंडे, सन्यासी और पुरोहित मौजूद हैं जो अनन्यता और निगृहन वृत्ति को बढ़ावा देते है और आम लोगों को सिखाते है कि वे अन्तर्मुखी बने और अतीत की ओर लौटें। वे उस सबका जो हमारे देश की धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक परम्परा में और वर्तमान अनुभूतियों और पूर्वाग्रहों में नकारात्मक है, समर्थन करते है। ये नकारात्मक तत्त्व जनता के प्रयाण को रोकते है। माया, कर्म, आत्मा, शरीरान्तरण और वर्णाश्रम धर्म के घिसे–पिटे सिद्धान्त, जो प्रगति के मार्ग में रूकावटें सिद्ध हो चुके है। साम्प्रदायिकता और संकीर्ण धार्मिक कट्टरता के जाति–भेदों, ज्योतिष, और यज्ञों को तथा हर उस चीज को जो एक धर्मनिरपेक्ष और संयुक्त संस्कृति के स्वस्थ विकास को अवरूद्ध करती है, प्रोत्साहित किया जा रहा है। अंधराष्ट्रवाद के समर्थक आज भी इस्लामी राज्य और हिन्दू राष्ट्रीयता का नारा उठाते हैं।[3] (भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ. 507–508)

इस रूझान के चलते और उपनिवेशवादी शासकों की दुर्नीति से मुस्लिम लीग जैसी साम्प्रदायिक पार्टी का जन्म हुआ जो अन्ततः भारत विभाजन का कारण बना। यह विडम्बना ही है कि अपनी नितान्त सेकुलर सोच के बावजूद गाँधी अपने को सदा ही एक सनातनी हिन्दू घोषित करते रहे है। वही गाँधी आजादी के बाद एक कट्टर हिन्दू द्वारा ही मारे गये।

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक के शुरूआत से ही देश मे राजनीतिक मंच पर जिस तरह के खेल खेले गए उन्ही का परिणाम है– साम्प्रदायिकता। उग्र हिन्दू साम्प्रदायिकता का सामने आना, 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस और अन्ततः देश की सत्ता पर काबिज हो जाना और वह भी ऐसे तमाम राजनैतिक दलों की मदद से जो तब भी अपने को धर्मनिरपेक्ष कहते थे और आज भी कहते हैं। तब से साम्प्रदायिकता का जहर फैलता ही जा रहा है। क्या हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच इस साम्प्रदायिकता का अन्त नहीं हो सकता, जिस प्रकार आर्य और आर्येतर जातियों का संघर्ष खत्म हो गया। आर्यों के असुरों, दानवों और दैत्यों से संघर्ष पर विचार करते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है, 'कितना भयानक संघर्ष वह रहा होगा, जब वह घर में पालने में सोये बच्चों को चुरा लिये जाते होंगे, समुद्र में फैंक दिये जाते होंगे, पर किस प्रकार उसको भूल–भुलाकर दोनों विरोधी पक्षों के उपास्य देवताओं को समान श्रद्धा भाव से ग्रहण किये हुए है। आज देश में हिन्दू–मुसलमान भी इसी लज्जाजनक संघर्ष में व्याप्त है। बच्चों और स्त्रियों को मार डालना, चलती गाडी से फैंक देना, मनोहर घरों को आग लगा देना मामूली बातें हो गयी है। ... पुराने इतिहास की ओर दृष्टि ले जाता हूँ तो वर्तमान इतिहास निराशाजनक नहीं मालूम होता है।'[4] (आम फिर बौरा गए।)

साम्प्रदायिकता का प्रभाव

क्या वर्तमान में ऐसी सामाजिक समरसता नजर आ रही है ? उत्तर है– 'नहीं'। जहां दशहरा और मुहर्रम

जैसे पवित्र त्यौहारों पर साम्प्रदायिक दंगे हो जाते है। गुजरात से लेकर मुज्जफरनगर दंगो का सफर डरावना है। जहाँ साम्प्रदायिक ताकतों द्वारा बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद राममंदिर को बहुसंख्यक की ताकत पर राजनीति को गरमाया जा रहा है। तथाकथित गौरक्षक नरभक्षक बन रहे है। कावड़ उत्पात मचा रहे है। एक धर्म के विरूद्ध दूसरे धर्म को खड़ा कर खौफ़नाक माहौल तैयार किया जा रहा है। भारत माता की जय बोलने वालों को देशभक्ति का प्रमाण पत्र बाँटा जा रहा है। एक रंग में रंगकर दूसरे रंगों की आभा को फीका करने का दुःसाहस किया जा रहा है। ऐतिहासिक नामों को बदलकर शहरों का एक विशेष विचारधारा के तहत् नाम बदले जा रहे है। महापुरूषों की मूर्तियों का स्थापन कर राजनीति चमकाई जा रही है। महापुरूषों पर विशेष लेबल लगाकर खेमेबन्दी की जा रही है। जहाँ राजनेता बेलगाम होकर दूसरे धर्मावलम्बिलयों की आस्था के विरूद्ध शब्द बाण चलाकर जनता को उन्मादी बना रहे है। धार्मिक ध्रुवीकरण कर जनता के विवेक को कुंठित कर रहे है। धर्म का अफीम चटाकर लोगों को बरगलाया जा रहा है। साम्प्रदायिक बहस को जिन्दा किया जा रहा है, आस्था के नाम पर लोगों को मारा जा रहा है। साम्प्रदायिकता की भट्टी को तरह–तरह के ईंधन डालकर गरमाया जा रहा है। जहाँ न्यायपालिका के शीर्षस्थ पदों पर आसीन न्यायाधीश हिन्दुस्तान को हिन्दू राष्ट्र की मंशा जाहिर कर रहे है। जहाँ संविधान की मूल भावना धर्मनिरपेक्षता को तार–तार किया जा रहा है। जहां रक्षक ही भक्षक बनकर सुरक्षा कवच को धराशायी कर रहे है। विदेशियों से तो रक्षा कर पाये परन्तु इस आन्तरिक कलह में संस्कृति की दरार को मोटा होने से कौन रोकेगा ? निर्मल वर्मा ने सही ही लिखा है, 'पिछले तीन हजार वर्षो में शायद ही ऐसा कोई समय रहा हो जब भारत को यवनों और मलेच्छों ने न घेरा हो, पहले यूनानियों और हूणों ने, फिर इस्लाम और उसके ठीक बाद ईसाई मिशनरियों और यूरोपीय विजेताओं ने। भारतीय संस्कृति का अद्वितीय लक्षण यह नहीं है कि कैसे वह शताब्दियों से होने वाली निरन्तर विदेशी घुसपैठों में जीवित रह पायी बल्कि यह कि उनकी प्रभुसत्ता के बावजूद किस प्रकार अपने को अक्षत रख सकी।'[5]

अब इस अक्षत संस्कृति गंगा–जमुनी तहजीब को कैसे बचाया जा सकेगा, जब साम्प्रदायिक ताकतें इतनी ताकतवर है कि अब भारत मे रहने वाले नागरिक की नागरिकता के अधिकार, उसके परीक्षण और निर्णय का अधिकार उनके दायरे में है। अब भारत में रहने वाले नागरिक को भारतीय होने को अधिक अपने हिन्दू होने का प्रमाण देना होगा। फासीवाद के इस रास्ते से हिन्दू राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का नाम दे दिया गया है। जिस पर बहस की गुंजाइश खत्म हो जाती है। परमानन्द श्रीवास्तव ने दूघनाथ सिंह के उपन्यास 'आखिरी कलाम' की प्रस्तावना के वाक्य को अपने एक लेख में कितना सटीक प्रयोग किया है कि हमें इस बात का डर नहीं है कि लोग कितने बिखर जायेंगे, डर यह है कि लोग नितान्त गलत कामों के लिए कितने बर्बर ढंग से संगठित हो जायेंगें। हरिशंकर परसाई ने कभी खीजकर लिखा था, 'संस्कृति की हड्डी अब कुत्ते चबाते घूम रहे है। संस्कृति की हड्डी कुत्ते का जबड़ा फाड़कर उसके खून को उसी को स्वाद से चटवा रही है।'[6]

इस्लाम का दृष्टिकोण

नफरत की आग फैलाने वाले, आतंक के सहारे अराजकता पैदा करने वाले, निर्दोष जनता भय पैदा करने वालों का कोई धर्म नहीं होता है। उनका तो अपना ही उत्पात मचाने वाला संगठन होता हैं। जिसका धर्म से कोई सरोकार नहीं होता है। वे लोग इंसान की मौत के सौदागर होते है। धर्म को कंलकित करने वाले लोग होते है। इस दौर में साम्प्रदायिक संगठनों द्वारा इस्लाम को बदनाम करने का जो घृणित खेल खेला जा रहा है, जो चिन्ताजनक है। पवित्र ग्रंथ कुरान शरीफ इनका कठोरता के साथ खण्डन करता है। जो लोग कुरान शरीफ के सिद्धान्तों पर अमल नहीं करते है, वे मुसलमान नहीं हो सकते।

1. धर्म के सम्बन्ध में किसी प्रकार की जबरदस्ती वैध नहीं है।[7]
2. किसी कौम की दुश्मनी तुम्हें इस बात पर न उभारे की तुम उसके साथ अन्याय करो।[8]
3. अल्लाह के अलावा जिन पूज्यों को लोग पुकारते है उन्हें कदापि बुरा भला (गाली) न कहो।[9]
4. जिसने किसी इंसान के खून के बदले या जमीन में फसाद फैलाने के सिवा किसी और कारण से कत्ल किया, उसने मानों सारे इंसानों का कत्ल कर दिया ओर जिसने किसी एक को जिन्दगी दी, उसने मानों तमाम इंसानों को जीवन प्रदान किया।[10]

उपर्युक्त कुरान की आयतें क्रमशः धर्मान्तरण, परधर्म–द्वेष, देवताओं का अपमान, आंतक फैलाने या निर्दोष लोगों को मारने वालो को शक्त हिदायत है। कोई मुसलमान तब तक मुसलमान हो नहीं सकता, जब तक वह एक अच्छा इन्सान नहीं है।

5. प्रेमचन्द के विचार एवं साहित्य

प्रेमचन्द सच्चे मानवतावादी लेखक थे। उनका इतिहास बोध अत्यन्त पैना और स्पष्ट था। उन्होंने अपने लेखों और साम्प्रदायिक टिप्पणियों में तत्कालीन साम्प्रदायिक समस्याओं पर दो टूक विचार प्रस्तुत किये हैं। लेखक ने सही लिखा है, 'प्रेमचन्द्र जहाँ भी साम्प्रदायिकता देखते है। उस पर आक्रमण करते है। जब वे हिन्दू साम्प्रदायिकता की निर्मम आलोचना करते है तो लगता है उनसे बढ़कर मुस्लमानों का पक्षधर कोई होगा ही नहीं।[11] जमाना (फरवरी 1924) मनुष्यता का अकाल

हिन्दू और मुसलमान की समस्या प्रेमचन्द के समय में भी थी। कट्टर हिन्दूवादी और मुस्लिमवादी सोच समाज और राष्ट्र के लिए संकट थी। प्रेमचन्द ने अनेक स्तरों पर हिन्दू–मुसलमान के आपसी सम्बन्धों को देखा–परखा था। 'जुलूस' कहानी राजनीतिक संदर्भ में बड़ी महत्त्व की है, जिसमें जुलूस का नेतृत्व इब्राहीम के हाथ में देकर, एक मुसलमान के प्रगाढ़ देशप्रेम की पहचान करायी है। इब्राहीम के जनाजे में हिन्दू और मुसलमानों का शामिल होना इस बात का परिचायक है कि देश का सपूत सबका है। इब्राहीम के शव को गंगा जल में नहलाना इस बात का संकेत है कि मुसलमानों के लिए गंगाजल पवित्र और आत्मीय है।

'मुक्तिधाम' कहानी में रहमान आर्थिक विवशता के कारण गाय बेचने को मजबूर होता है। परन्तु वह गाय से बहुत प्यार करता है। कसाई द्वारा अधिक रूपये में दिए जाने पर भी वह उन्हें न बेचकर दाउदयाल को गाय बेचता है। गन्ने के खेत में आग लग जाने पर वह कर्ज समय पर नहीं चुका पाता है। पुलिस द्वारा पकड़े जाने पर दाउ दयाल उसका कर्ज माफ कर देता है। प्रेमचन्द ने अर्थ के ऊपर धार्मिक सद्भाव को तरजीह दी है।

पंचपरमेश्वर गांव के सौहार्दपूर्ण वातावरण की कहानी कहती है जहां हिन्दू और मुसलमान में कोई भेदभाव नहीं था। जहाँ सम्प्रदाय, जाति के भेद मिटकर आदमी केवल इन्सान शेष रह जाता है।

'कायाकल्प' उपन्यास में आगरा में साम्प्रदायिक दंगा हो जाता है यशोदानन्द मारे जाते है। उसकी धर्मपुत्री यशोदा को मुसलमान उठाकर ले जाते है। किन्तु वह मुस्लिम नेता ख्वाजा साहब की सहायता से लौटा दी जाती है। लेकिन चक्रधर के माता–पिता यशोदा के साथ छूत का सा व्यवहार करते है। दंगे के पीछे दूषित राजनीति और दोनों धर्मों के उन्मादी लोगों के लड़ने की सनक है। चक्रधर के माध्यम से प्रगतिशील चेतना का उभार भी है जो भगायी गयी लड़की को अपना लेता है। चक्रधर गाय की कुर्बानी के बदले अपनी कुर्बानी का प्रस्ताव रखता है। ख्वाजा अहल्या को अपनी बेटी मानता है और जब वह उसके अत्याचारी बेटे का खून कर देती है तो उसे शाबासी देता है।

'कर्मभूमि' में अमरकांत और सलीम की मित्रता अनूठी है। उनकी दोस्ती साम्प्रदायिक सद्भाव की प्रतीक है। प्रेमचन्द चाहते है कि इन्सानियत के सामने साम्प्रदायिक कटुता टिक न सके। मुन्नी के प्रसंग को लेकर जो आन्दोलन छिड़ता है उसमें शकीना और दादी भी भाग लेती है। गरीब होकर भी शकीना रूमाल बेचकर इस आन्दोलन में चंदा देती है। शकीना मजहब की परवाह न कर अमरकांत से प्रेम करती है। और उसके साथ विवाह करने को तैयार है। मुसलमान पात्र काले खां साम्प्रदायिकता से मुक्त है। उसकी मौत पर हिन्दू पात्र ऐसे गमगीन हैं मानों उनका सगा भाई मर गया हो।

सेवासदन उपन्यास में साम्प्रदायिकता के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थान से हटाकर बस्ती से बाहर रखने का मसले पर हिन्दू और मुसलमानों में ठन जाती है। प्रेमचन्द यह दिखलाते है कि नारी पराधीनता और वेश्यावृत्ति हिन्दू और मुसलमान दोनों में है। वह दोनों संस्कृतियों के ठेकेदारों से कहते है कि दोनों संस्कृतियों के लोग औरतों से वेश्यावृत्ति करवाते है।

प्रेमचन्द ने साम्प्रदायिक दंगों की निराधारता, असंगति और बेतुकेपन का पर्दापाश किया है और इस समस्या के मूल के बुर्जुआ समाज की स्वार्थ प्रेरित प्रवृत्ति को जिम्मेदार ठहराया है। वे लिखते है, 'आडम्बरमय जीवन के निर्वाह के लिए तरह–तरह के ढांचे रचे जाते हैं, धर्म की आड़ ली जाती है, भाषा और लिपि के अनेक कल्पित विभिन्नताओं की दुहाई दी जाती है, केवल इसलिए कि शिक्षितों का खटमली जीवन आनन्द से व्यतीत हो।'[12] (विविध प्रसंग 2 सं. (अमृतराय) पृष्ठ 374)

प्रेमचन्द अपने साहित्य में दिखाते है कि साधारण हिन्दू और साधारण मुसलमान अपने–अपने धर्मों का पालन करते हुए एक साथ व्यापक मानवीय सम्बन्ध में जुड़ा है। हिन्दू मुस्लिम के बीच साम्प्रदायिक द्वेष मुल्ला मौलवी, पंडित–पुरोहित और सेठ साहूकार फैलाते है, जिनका स्वार्थ सधता है। ऐसे ही विचार मध्यकालीन संत कबीर के थे। संस्कृति की पुकार को प्रेमचन्द सीधे सादे आदमियों को साम्प्रदायिकता की और घसीटने का मंत्र मानते है। हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों के कट्टरपंथी नेताओं और संगठनों द्वारा अपनी–अपनी संस्कृति खतरे में पड़ने की दुहाई देकर साम्प्रदायिक घृणा और द्वेष फैलाने का प्रयास इसी मंत्र का परिणाम है।

'कायाकल्प' में मुल्लाओं और पंडितों की टकराहट के कारण साम्प्रदायिक दंगा होता हे। प्रेमचन्द की नजर में मजहब का ढ़िढोरा पीटने वाले देश के विकास में अवरोध है। प्रेमचन्द ने हिन्दू मुस्लिम भेदभाव को साम्प्रदायिकता में सिमटना उचित नहीं समझा। उन्होंने हिन्दू समाज में व्याप्त जातिभेद, अछूतों पर हो रही यातनाओं, सवर्णो की कूपमंडूकता और स्वार्थपरता आदि में निहित साम्प्रदायिक दृष्टिकोण का भी पर्दापाश किया है। मुसलमानों के अंधविश्वास की भी कड़ी आलोचना की है। 'ठाकुर का कुआँ' कहानी हो या कर्मभूमि में अछूतों का मंदिर प्रवेश का प्रसंग प्रेमचन्द ने साम्प्रदायिकता की जड़ तक पहुँचने का प्रयास किया है। कर्मभूमि का पात्र सलीम एक कट्टर मुसलमान से बात करता हुआ कहता है, कि अगर मुसलमान होने का यह मतलब है कि गरीबों का खून किया जाये तो मैं काफिर हूँ। मदन गोपाल ने प्रेमचन्द के हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों की मानसिकता की पड़ताल करते हुए कितना सही लिखा है, 'हिन्दू–मुस्लिम एकता की दिशा में कोई भी कदम उठाया जाता तो बड़े प्रसन्न होते। ख्वाजा हसन निजामी ने भगवान कृष्ण पर एक पुस्तक लिखी। प्रेमचन्द बहुत प्रसन्न हुए। जिस प्रकार एक मुस्लिम लेखक ने हिन्दू महापुरूष को मुसलमानों के सामने रखने का प्रयत्न किया उसी प्रकार प्रेमचन्द इस्लामी इतिहास के बारें में हिन्दी में लिखना चाहते थे।'[13]

प्रेमचन्द ने हिन्दू सम्प्रदायवाद का विरोध किया इस सिलसिले में अमृतराय ने भी लिखा है कि सख्त–सुस्त जो उन्हें अपनी बिरादरी को कहना था, उन्होंने कह दिया। लेकिन उससे होता क्या है, खूंखार नफरत का अजदहा अब भी वैसे ही मुँह बाए खड़ा था और अपनी जहरीली सांसो का बगूले छोड़ रहा था। जिसका जवाब डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, 'यह सही है कि हमारे लेखक और समाज सुधारक सम्प्रदायवाद को मिटा नहीं पाये लेकिन यह भी सही है कि पाकिस्तान और इंग्लिस्तान से भिन्न हिन्दुस्तान में धर्म–निरेपक्ष राज्य अपने आप कायम नहीं हो गया। इसके पीछे प्रेमचन्द जैसे लोगों का संघर्ष है। 'लेकिन उससे क्या होता है ?' इस टुकडे में लेखक के अकेलेपन की तस्वीर नजर आती है। प्रेमचन्द ने मानो हिन्दू बिरादरी को सख्त–सुस्त कहकर अपने दिल की भड़ास निकाली हो, मगर समानधर्मा लेखकों के साथ मिलकर सम्प्रदायवाद के खिलाफ जमकर संघर्ष किया है। यह बात याद रखने योग्य है कि प्रेमचन्द ने न केवल हिन्दुओं के रूढ़िवाद का

विरोध किया उन्होनें मुसलमानों के अंधविश्वासों की भी तीव्र आलोचना की है।'[14]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों में हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों की समस्याओं को वैज्ञानिक दृष्टि से परखने, उसका विश्लेषण करने तथा कलात्मक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस समस्या का तटस्थ विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण प्रेमचन्द को महान मानवतावादी लेखक के रूप में प्रस्तुत करता है।

साम्प्रदायिकता को रोकने का प्रयास

धर्मनिरपेक्षता को साम्प्रदायिक शक्तियाँ अब मुसलमान तुष्टीकरण से जोड़कर देख रही है जिससे धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को बेमानी लगती है। अब तो यह होड़ लगी है कि कौन कितना नृशंस साम्प्रदायिक हो सकता है। आज भी एक अजीब एकता और साम्प्रदायिकता मेलजोल अपराधी गिरोहों में मिलता है। सम्प्रदायवाद हमेशा एक प्रतिपक्ष सम्प्रदाय को जन्म देता है। राज्य का कर्त्तव्य है कि सेकुलर ढांचे के लिए जो भी प्रयास किए जा सकते है वह ईमानदारी से करें। राजनेताओं द्वारा दिए बेलगाम साम्प्रदायिक बयानों का न्यायालय नोटिस ले और रोकथाम की व्यवस्था करें। सरकारी बयानबाजी कर माहौल खराब करने वालों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही करें। सरकार राजनीतिक–आर्थिक और सामाजिक सांस्कृतिक कार्यों के बीच उचित सन्तुलन बनाने का प्रयास करें। जहाँ जरूरी हो हस्तक्षेप करे और आगे चलकर जनसमुदाय में सद्भाव कायम करने के लिए जमीनी स्तर पर प्रयास करें। इस पर विचार कर कार्यवाही करना बेहद जरूरी है।

निष्कर्ष

वर्तमान में देश की सबसे समस्या साम्प्रदायिकता की है। देश के सेकुलर समाज में बड़ा बिखराव पैदा हो गया है। हम बाहरी दुश्मनों सें महफूज होकर अन्दर गृहकलह का वातावरण में जीने को मजबूर हो रहे है। धर्म निरपेक्ष विचारों का अकाल नजर आ रहा है। विचारों की कमी बर्बरों के लिए फायदेमन्द होती है। हिन्दी प्रदेशों के दरवाजे पर बर्बरता के दस्तकों की थाप बढ़ती जा रही है। आज हमारे देशवासी लाखों की संख्या में अरब देशों, अमेरिका और यूरोप के देशों में जाकर आजीविका कमा रहें है। देश को आन्तरिक प्रदेशों के लोग भी अलग–अलग भाषा, अलग–अलग धर्म, विचारधाओं में विश्वास करने वाले कामकाजी स्तर पर सहिष्णुता और सद्भाव के आधार पर मिल–जुलकर रह सकते है। हमारी तंगनजरी दूर हो सकती है। धर्म और जाति के आधार पर विभाजन रेखाएँ जिन्हें हम देश के अंदर खींचते है और विदेश में इसके बन्धन से मुक्त होने की कोशिश करते है, यह बेतुकी बात हो जाती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दू–मुस्लिम एकता को साधना मानते हैं। हिन्दू–मुसलमानों के मिलन से ही मनुष्य सामान्य स्वार्थो से धरातल से उठकर मनुष्यता के धरातल पर बैठता है। वे लिखते है, 'हिन्दू–मुस्लिम मिलन का उद्देश्य है मनुष्य को दासता, जड़ित, मोह, कुसंस्कार, परमुखापेक्षिता से बचाना, मनुष्य को क्षुद्र स्वार्थ और अहमिका की दुनियाँ से उपर उठाकर सत्य, न्याय और औदार्य की दुनियाँ की ओर ले जाना, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण से हटाकर परस्पर सहयोगिता के पवित्र बन्धन में बांधना।[15] (भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या)

हत्यारों को इस देश में कभी सम्मान नहीं मिला है। समय के प्रवाह के साथ समय का चक्र शायद उसकी जगह तय कर देते हैं। हिटलर और मुसोलिनी को आदर्श मानने वाले धर्मान्ध लोग शायद इतिहास के उस मोड़ तक नहीं पहुँचे है जहाँ हिटलर को अन्धी गुफा में आत्महत्या करनी पड़ी थी और मुसोलिनी को सरेआम हत्या कर पेड़ पर लटका दिया गया था। वे आज भी इतिहास में क्रूर, हत्यारे और मानवता विरोधी खलनायकों के रूप अंकित है। देश हेतु निजी स्वार्थों को त्यागकर, लोकतांत्रिक और वामपंथी शक्तियों को सेकुलर बन्धन को प्रभावी बनाकर साम्प्रदायिक सोच को परास्त करना होगा। उस मानवीय सोच को विकसित करने की जरूरत है जो साम्प्रदायिकता की जड़ को पहचान कर इसकी जड़ों को उस गहराई तक खोद सके ताकि वह फिर कभी अंकुरित न हो। इसी में देश और देशवासियों का हित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998 पृ. 71*
2. *कथाक्रम (शैलेन्द्र सागर) जूलाई–सितम्बर 2003 पृ. 73–74*
3. *आलोचना (सम्पादक नामवर सिंह) अंक–28 पृष्ठ 98*
4. *निर्मल वर्मा, भारत और यूरोपः प्रतिश्रुति के क्षेत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली , 1991 पृष्ठ 31*
5. *आलोचना पत्रिका (नामवर सिंह) अंक–28 पृ. 95*
6. *पवित्र कुरान (सूरह बकर– 256)*
7. *पवित्र कुरान (सूरह मायदा– 08)*
8. *पवित्र कुरान (सूरह अनाम– 108)*
9. *पवित्र कुरान (सूरह मायदा– 32)*
10. *प्रेमचन्द विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2002*
11. *प्रेमचन्द (स.) विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2002*
12. *मदन गोपाल, कलम का मजदूर, राजकमल प्रकाशन, 1989 पृ. 148*
13. *डॉ. रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1989*
14. *आलोचना (सम्पादक नामवर सिंह) अंक–28 पृष्ठ 98*